ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

KEY WORDS:

जैन धर्म मे 24वें तीर्थकर भगवान महावीर और उनकी उपासना

Dr. Jubeda Mirzaj Sr.Lecturer M.A., Ph. D., Government Girls PG Collage, Sikar (Rajasthan)

Mrs Rekha Yadav* Reserch Scolar, Deaprment of History Univercity of Rajasthan *Corresponding Author

जो पूर्ण वीतरागी और सर्वज्ञ पद को प्राप्त करता है; वह भगवान (परमात्मा) कहलाता है। अरहंत और सिद्ध ही ऐसे पद हैं। अतः उक्त पदों को प्राप्त पुरूष ही परमात्मा (भगवान) शब्द से अभिहित किये जाते हैं। अरहंतों में तीर्थकर अरहंत और सामान्य अरहन्त ऐसे दो प्रकार होते हैं। वर्तमान काल में धर्मतीर्थ के प्रवर्तक चौबीस तीर्थकरों में अन्तिम तीर्थकर अरहंत भगवान महावीर थे।

भगवान महावीर के अनुसार परमात्मा का कर्ता–धर्ता न होकर मात्र ज्ञाता – दृष्टा होता है तथा परमात्मा के उपासक (भक्त) की दृष्टि (मान्यता) में पर में कर्त्तत्वबुद्धि नहीं होती। जबतक पर में फेरफार करने की बुद्धि (रूचि) रहेंगी; तब तक उसकी दृष्टि को सम्यक् दृष्टि नहीं कहा जा सकता है।

वीतरागी परमात्मा का उपासक (भक्त) भी वीतरागता का ही उपासक होता है। लौकिक सुख (भोग) की आकांक्षा से परमात्मा की उपासना करने वाला व्यक्ति वीतरागी भगवान महावीर का उपासक नहीं हो सकता।

वह तो मात्र पंथव्यामोह से ही महावीर की उपासना करता है; वस्तुतः वह भगवान का उपासक न होकर भोगों का ही उपासक है।

भगवान का सच्चा स्वरूप न समझ पाने के कारण आज की उपासना में अनेक विकृतियाँ आ गई हैं। अब हम मूर्तियां में वीतरागता न देखकर चमत्कार देखने लगे हैं और चमत्कार को नमस्कार की लोकोक्ति के अनुसार जिस मूर्ति और जिस मन्दिर के साथ चमत्कारिक कथायें जुड़ी पाते है; उन मूर्तियों के समक्षऔर उन मन्दिरों में भक्तों की भीड़ अधिकाधिक दिखाई देती है। जिनके साथ लौकिक समृद्धि, संतानादि की प्राप्ति की कल्पनायें प्रसारित हैं; वहाँ तो खड़े होने को स्थान तक नहीं मिलता और शेष मन्दिर खंडहर होते जा रहे हैं; वहाँ की मूर्तियों की धूल साफ करने वाला भी दिखाई नहीं देता।

एक भगवान महावीर की हजारों मूर्तियाँ हैं और उन सब मूर्तियों के माध्यम से हम महावीर की पूजा करते हैं। पृथक–पृथक मन्दिरों में पृथक्–पृथक् मूर्तियों के माध्यम से पूजे जाने वाले महावीर पृथक्–पृथक् मन्दिरों में पृथक्–पृथक् मूर्तियों के माध्यम से पूज जाने वाले महावीर पृथक्–पृथक् नहीं हैं, वरन् एक हैं। भगवान महावीर अपनी वीतरागता एवं सर्वज्ञता के कारण पूज्य है; कोई लौकिक चमत्कारों और संतान, धनादि देने के कारण नहीं।

जो महान आत्मा स्वयं धनादि और घरबार छोड़कर आत्मसाधनारत हुओ हो; उससे ही धनादिक की चाह करना कितना हास्यास्पद है! उनको भोगादि का देनेवाला कहना, उनकी वीतरागता की मूर्ति को खंडित करना है।

एक तो महावीर प्रसन्न होकर किसी को कुछ देते नहीं हैं और न अप्रसन्न होकर किसी का बिगाड़ ही करते हैं, दूसरे यदि भोले जीवों की कल्पनानुसार उन्हें सुख–दुःख देने–लेने वाला भी मान लिया जाय तो भी यहसमझ में नहीं आता कि वे अपनी आमुक मूर्ति कीपूजा के माध्यम से ही कुछ देते हों, अन्य की पूजा के माध्यम से नहीं। यदि यह कहा जाय कि वे तो कुछ नहीं देते पर उनके उपासक को सहज ही पुण्य–बंध होता है तो क्या अमुक मूर्ति के सामने पूजा करने से या अमुक मन्दिर में घृतादिक के दीपक रखने से ही पुण्य बंधेगा, अन्य मन्दिरों में या अन्य मूर्तियों के सामने नहीं?

उक्त प्रवृत्ति के कारण हमारी दृष्टि, मूर्ति के माध्यम से जिसकी पूजा की जाती है, उस महावीर से हटकर मात्र मूर्ति पर केन्द्रित हो गई है और हम यह भूलते जा रहे हैं कि वस्तुतः हम मूर्ति के नहीं, मूर्ति के माध्यम से मूर्तिमान (वीतरागी सर्वज्ञ भगवान) के पुजारी हैं।

यह सब क्यों और कैसे हुआ? यह एक विचारणीय प्रष्न है। जब ज्ञान की अपेक्षा क्रियाकांड को मुख्यता दी जाने लगती है; तब इस प्रकार की प्रक्रिया उत्पन्न होने लगती है। यही कारण है कि भगवान महावीर ने चारित्र को सम्यग्ज्ञान पूर्वक ही कहा है। अज्ञानपूर्वक की गई कोई भी प्रक्रिया धर्म नहीं कहला सकती। कहा भी है – भगवान की सही रूप में पहिचाने बिना, उनकी उपासना सही अर्थो में नहीं की जा सकती है। अतः सबसे पहिले उपासक को परमात्मा (भगवान) का स्वरूप अच्छी प्रकार समझना चाहिये।[10]

परमात्मा वीतरागी एवं पूर्ण ज्ञानी होता है। अतः उसका उपासक भी पूर्णज्ञान एवं वीतरागता का उपासक होना चाहिये। विषय–कषाय का अभिलाषी व्यक्ति वीतरागी भगवान का उपासक हो ही नहीं सकता।

"गुणेषु अनुरागः भक्ति – गुणों में अनुराग को भक्ति कहते हैं।" जबतक हम परमात्मा के गुणों को पहिचानेंगे नहीं, उनके अभिलाषी कैसे होंगे, उनके प्रति हमारा अनुराग भी कैसे होगा? परमात्मा का सच्चा भक्त सिर्फ परमात्मपद चाहता है, अन्यत्र उसकी रूचि नहीं होती।

अतः हमें भगवान के उपासक कहलाने के पूर्व एक बार अपनी उपासना प्रवृत्ति की स्थिति पर विचार करना होगा और कारणवष आई हुई इन कुप्रवृत्तियों को अपनी उपासनापद्धति से अलग करना होगा।

यदि हम सामाजिक स्तर पर उन वीतरागता विरोधी प्रवृत्तियों को नहीं हटा सकते तो इनसे अपने आपको तो बचा ही सकते हैं।

यहाँ यह प्रष्न किया जा सकता है कि भगवान की भक्ति से क्या लौकिक सुख भी नहीं मिलता है?

बात यह है कि वीतरागता के उपासक ज्ञानी भक्त की लौकिक सुख में रूचि नहीं होती, पर शुभभाव होने से पुण्य बंध अवष्य होता है और तदनुकूल सुख (भोग) सामग्री भी प्राप्त होती है, पर भगवान महावीर के उपासक की दृष्टि में उसका कोई मूल्य नहीं तथा विषयाभिलाषा से की गई भगवान की भक्ति, राग की तीव्रता और भोगों की अभिलाषा से युक्त होने से पुण्य बंध का कारण भी नहीं होती; क्योंकि भोगाभिलाषा एवं रागभाव तो पापभाव है।

उक्त सम्पूर्ण बात कहने से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि आप भगवान महावीर की उपासना करना ही छोड़ दें; बल्कि मै चाहता हूँ कि आप भगवान महावीर के सच्चे अर्थो में उपासक बनें, उनके स्वरूप को समझें व उनकी उपासना के हेतु को समझकर सही रूप दें।

जब वीतरागता और आत्मज्ञान की पूर्णता ही हमारा प्राप्तव्य बनेगा; तभी हम वीतरागी, सर्वज्ञ भगवान महावीर के सच्चे उपासक कहलाने के अधिकारी होंगे।

1. उत्तरपुराण – 21/18
2. कसायपाहुड जयधवला सहित 16/23
3. कार्तिकेयानुप्रेक्षा 10/17
1. तिलोयपण्णत्ति 16/42